वेद की त्रिसप्त स्थापना : सतत स्थायित्व का सिद्धान्त

Pramod Kumar Dubey

Bhasha Vijnan, N.C.E.R.T., New Delhi - 110016

Abstract

The whole world is talking about the sustainable development and every one is accepting that the present scientific development pattern is destructive. In my version they are searching the way to achieve the eternal sustainability. The Vedas provides the answer for the problem in the form of "Tri-Sapta" set-up, the Science of Our Faith.

The power structure produced by Vedas is based on Tri-Sapta. The Tri-Sapta set-up is a cosmic power structure of nature which is applicable from micro to macro level.

This theory shows the dynamic equilibirium between different sectors and the core of the nature.

This setup can also be seen in Sun in which a moment is created at the Yajura centre due to dynamic equilibrium between the light wave of Saama and sound wave of Rig. This equilibrium creates seven flames.

The geometrical structure of solar system also establishes the Tri-Sapta set-up. Here in Vedas we consider only six main planets and the sun. In this structure the green earth lies at the fourth places which makes it the central one and possess life.

Vedas tells us the cosmic structure cannot be changed due to destruction and recreation of Universe. Creation of Universe is a continuous dynamic process, harmonic in nature whose extreme points are energy state and material world.

Para Wak is transformed in Hiranya Bindu to forms trigonal form of Trik with Yajur, Rik and Saam. This Trik creates the seven flames of Panch Tatwik Sun with one at the centre and remaining six in surrounding. In function these six can be seen in the form of six seasons (Ritus). This contains two Ayans in trigonal shape in opposite direction which forms the hexagon of eternal sustainability. This is known as Brahmandiya Vedi in Vedas. This structure kept enact in every situation.

प्रकृति विरोध से आत्मघात की ओर विश्व जीवन को तेज गति से खींचकर ले जानेवाला आधुनिक विज्ञान ठीक-ठीक नहीं जानता कि प्रकृति है क्या? इसका कोई स्वतन्त्र और सजीव अस्तित्व है भी या नहीं? जब से प्राकृतिक आपदाएँ बढ़ती जा रही हैं, आपदा प्रबन्धन की चिन्ता बढ़ रही है और इसी के साथ भारतीय शास्त्रों की बातें भी प्रासंगिक होने लगी हैं।

हमारे शास्त्रों ने प्रकृति को परिणामिनी कहा है। क्योंकि यह कर्मों का फल देती है। हमारे गाँवों में गाई जानेवाली प्राती की एक पंक्ति है- 'जइह जंगल में, पाता जनि तुरिह - न बैदा घर जाए - ये रमता! राम के गुन गइह।' जंगल जाना तो पत्ते मत तोड़ना, ऐसा करोगे तो दवा के लिए वैद्य के घर जाना नहीं पड़ेगा। लोक जीवन को वेद ने यही शिक्षा दी थी और सौ वर्ष जीने की गारंटी। लेकिन उत्पाति आधुनिक विज्ञान नहीं जानता कि प्रकृति भी कोई सजीव शरीर है, ब्रह्माण्ड भी सप्राण काया। जैसे हमारा शरीर तीन धातुओं और सप्त प्राणों से रचा हुआ है, ब्रह्माण्ड काया भी तीन गुणों और सात लोकों से बनी है। आज का नया-नया उपजा ज्ञान-विज्ञान लम्बी ऐतिहासिक यात्रा का सुव्यवस्थित परिणाम नहीं है अपितु लूटपाट से खड़ा किया गया है इसीलिए दुर्व्यवस्थित है। यूनानी इतिहासकार बताते हैं कि सिकंदर ने भारत से हजारों ग्रन्थों को लूटा, वह बड़े-बड़े नावों में भरकर उन ग्रन्थों को अपने देश ले गया। ढाई सौ वर्ष पहले अँग्रेज हमारी सम्पत्ति लूटने लगे और अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड में उस सम्पत्ति से औद्योगिक क्रांति शुरू हो गई। स्वाभाविक है, इस तरह लूटपाट के ज्ञान और धन से विकसित विज्ञान सुव्यवस्थित नहीं, आक्रामक ही होगा। उसे प्रकृति का वास्तविक ज्ञान होगा भी कहाँ से।

Vijnana Bharati

प्रकृति का अर्थ होता है, काल को सृष्टि-यज्ञ के लिए प्रकृत करने वाली/परिणत करनेवाली शक्ति। काल को आकार देनेवाली इस शक्ति का स्वरूप क्या है? इसी वैज्ञानिक विषय का विवेचन वैदिक त्रिसप्त के आधार पर मुझे अपनी छोटी बुद्धि से करने की लालसा है। वैदिक त्रिसप्त को आधार बनाकर सतत स्थायित्व के सिद्धान्त की खोज करने का उद्देश्य है- सनातन जीवन बोध में बसे अनश्वरता के विज्ञान को जानना। इस दृष्टि से यह सिद्धान्त आस्था का विज्ञान है। प्रश्न उठ सकता है कि जो स्वयं शाश्वत है उसमें अविनाशी स्थायित्व तो होगा ही, इसे खोजना क्या है? वस्तुतः शाश्वत में जिस स्थायित्व का बोध होता है उसके व्यक्त रूप में एक सातत्य है। यह सातत्य जिस स्थायित्व से अनुभव होता है उसका कारण क्या है, अर्थात् स्थाणु में विष्णु क्या है? शाश्वत में सतत क्या है?

स्थायित्व के उस कारण को जानना है जो अनश्वर होने की हमारी इच्छा पूरी कर सके। इस प्रकार के ज्ञान का प्रकाशन अनेक बार विभिन्न उद्देश्यों से किया गया है, फिर भी नए संदर्भ में उन्हीं आप्त वचनों को कहना-सुनना आवश्यक लग रहा है। संभव हैं, यह मेरे जैसों को नया-नया सा लगे।

वेद यह घोषित करता है कि सृष्टि के पूर्णतः नष्ट हो जाने के बाद जब पुनः सृष्टि होगी- सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी इत्यादि खगोलीय पिण्ड जैसे अभी है, ठीक वैसे ही होगे।[१] इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति के दृश्यमान जगत के भीतर कोई शाश्वत अविनाशी शक्ति संरचना निहित है। यही अव्यक्त शक्ति एक सीमित कालखण्ड के लिए सृष्टि करती है जो उसके अस्तित्व का अल्पांश होता है। वह अपने मूल स्वभाव में सदा शेष रहती है। उसके सृष्टि रचने का सूत्र नहीं बदलता और न शक्ति संरचना बदलती है। यह संरचना प्रकट रूप में त्रिसप्त है। त्रिसप्त से सत्य और ऋत, काल और सृष्टि-यज्ञ को समझ जा सकता है।

त्रिसप्त की वैदिक स्थापना पर आधारित 'सतत स्थायित्व के सिद्धान्त' को प्रमाणित करने के लिए किसी कृत्रिम प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है, इसका विश्वरूप प्रत्यक्ष है।[२] अर्थववेद के इस प्रथम मंत्र में प्रार्थना की गई है कि 'जिस अमूर्त मूल वाग् के स्वामी का त्रिसप्ताकार बल विश्व के सभी रूपों की रचना करता है, उन्हें धारण करता है वह मेरे लिए भी दाता बन जाए।' चूँकि यह त्रिसप्ताकार बल विश्व के सभी रूपों में है, इसे हम-आप सामान्य अवलोकन से भी देख सकते हैं। हम जानते है कि लाल, पीले और नीले रंग एक दूसरे से मिलकर सात रंग बनाते हैं; तीन प्रधान किरणें सात रंगों की किरणों का इन्द्रधनुष बनाती है। हम जानते हैं, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के आधार पर संगीत के सात स्वरों का सरगम बनता है। हम-आप देख सकते हैं, सात ग्रह-पिण्डों में चौथा ग्रह पिण्ड पृथ्वी चौथी रश्मि की भांति हरी-भरी है। इसी चौथी रश्मि में जीवन है, और यही सतत स्थायित्व के सिद्धान्त का प्रतिपाद्य है। इसके दोनों ओर तीन-तीन रश्मियाँ है। इन दोनों त्रिकों में अग्नि और सोम तो है, पर जीवन नहीं; जीवन का हरा रंग तो इन दोनों के मिलने से बनता है।

तीन और सात सृष्टि के गणित का प्रत्यक्ष समीकरण है। जब मूल वाग् त्रिगुणित हो कर चार आयामों-संख्या, रंग, रेखा और ध्वनि में समान रूप से प्रकट होता है तब सृष्टि के आकार और दृश्य खुलने लगते हैं। सूर्य की सात वह्नियों से कौन परिचित नहीं है। प्रिज़्म से सात किरणों को झाँकनेवाला, न्यूटन का चक्का नचानेवाला औजारी विज्ञान यह देखकर चौंक सकता है कि सूर्य की सात वह्नियाँ जब नीम के पेड़ की आरोग्यदायी पत्तियों से छनकर धरती पर उतरती हैं, गाँव का मन उन्हें सिर झुकाता है इन सात बहिनी की पूजा न जाने कब वैदिक विज्ञान से चलकर लोक-जीवन में आया होगा। विज्ञान बोध से वंचित लोक-जीवन में भ्रांतियाँ अवश्य उपजती हैं। लेकिन, तब लोक आस्था रहस्य नहीं रहती, जब उसका विज्ञान दिखाई दे जाता है। त्रिसप्त को लोक-जीवन में भी पूज्य स्थान मिला है। यह आयुर्वेद, ज्योतिष, तंत्र और योग में अलग-अलग रूपों में प्रचलित है। त्रिसप्त एक सर्व प्रमाणित स्थापना है।

वेद के अनेक प्रसंगों में त्रिसप्त की चर्चा आयी है। शुक्ल यजुर्वेद में शुक्र ज्योति और सत्य ज्योति के मिलने से चित्र ज्योति के बनने का उल्लेख मिलता है। चित्र ज्योति दृश्यमान सात ज्योतियाँ है।[३] इस संदर्भ की चर्चा में कहीं सप्त प्राण, सप्त ऋषि, सप्त छंद, सप्त समिधा इत्यादि हैं तो कहीं सात रश्मियों के अश्व काल-प्रवाह की सूचना देते हैं।[४] यही संरचना वाल्मीकि कृत रामायण की भी है।[५] क्योंकि यह कथा सत्य और असत्य के दो अयनों के नीचे से सूर्य सदृश्य राम के चरित्र को प्रकट करती है। रामायण की कथा के सत्य राम की ऋत है सीता-राम को व्यस्त करनेवाली वेदी हैं सीता-चैत्यरूपा। यह साहित्य का त्रिसप्त इसलिए इंगित करना आवश्यक लगा कि साहित्य के सृजन-कल्प में लोक का मन होता है यह मन भी यजुः केन्द्र के मन का मानुषी रूप है। रामायण सनातन मन को ध्रुवास्मृति में स्थित

Vijnana Bharati

करता है। इससे लोक-जीवन में सतत स्थायित्व बना रहता है। आज की शिक्षा पराधीन है। अन्य ज्ञान स्रोत भी भ्रांत है; साहित्य-संस्कृति को फिल्म-इल्म, पत्र-पत्रिकाएँ अब सत्-असत् के विवेक से नहीं, किसी अन्य उद्देश्यों से प्रेरित करती हैं। वे हमे गया गुजरा समझ कर बदलने का व्यवसाय करती हैं और हम दुख में डूबते जा रहे है; क्योंकि हमारे पास कुछ था, जो अब खोता जा रहा है। ऐसे कालिया नाग के दंश का अंत कृष्ण की वंशी की तान अवश्य करेगी क्योंकि उसकी वंशी के सात स्वरों में जड़ता को भेदनेवाली साम की सहस्त्रों अर्चियाँ हैं।

इसके पहले कि त्रिसप्त आधाकरत सतत स्थायित्व के सिद्धान्त की व्याख्या की जाए, वेद वर्णित सृष्टि प्रक्रिया की थोड़ी-सी चर्चा आवश्यक है। क्योंकि त्रिसप्त कोई स्वतंत्र स्थापना नहीं है। सबसे पहले नासदीय सूक्त (ऋग्वेद) में आये सृष्टि रहित अंधकार को याद करते हैं, जिस अछोर अंधकार के भीतरी ताप से एक प्रकाश पुंज ने आकार लिया।[६] निश्चय ही उस अरूप अंधकार में सृष्टि की शक्ति संरचना निहित थी। ऋग्वेद का 'ऋत सूक्त' ऋत और सत्य के प्रकट होने की बात बताकर इस भेद को खोलता है, सम्वत्सर और अहोरात्रियों में प्रकट होनेवाले सृष्टि-यज्ञ को पूर्ववत बतलाता है - जैसा पहले था, ठीक वैसा ही है। यह सृष्टि-कल्प बार-बार एक ही आकार में प्रकट होता है, सक्रिय होता है और अन्धकार में विलीन हो जाता है। किन्तु नवीन सृष्टि के सृजन का सूत्र और संदेश नहीं बदलता। यह सृजन -सूत्र की खोज में 'हिरण्यगर्भ सूक्त'[७] के मंत्रों की सहायता ली जा सकती है। ये मंत्र बतलाते है कि सबसे पहले अंधकार से जो दृश्य प्रकट हुआ था वह हिरण्यगर्भ था। गर्भ शब्द से सृष्टि की शक्ति और सृजन-प्रक्रिया का स्वतः बोध होता है। यही हिरण्यगर्भ पृथ्वी और आकाश का आधार बना। इसमें केवल प्रकाश नहीं था छाया भी थी। यह छाया अमृत थी - यह मृत्यु भी।[८] इसकी छाया में मृत और अमृत अर्थात् भौतिक और अभौतिक दोनों तरह के पदार्थ थे और इसमें वह भी था जिसने दोनों को धारण कर रखा था। हिरण्यगर्भ सूक्त की दो बातें और बड़ी प्रासंगिक प्रतीत हो रही हैं - पहली यह कि पृथ्वी और आकाश आदि पदार्थों के विभाजन से क्रंदन (विशेष ध्वनि) हुआ। यह क्रंदन खगोलीय पिण्डों के बीच के आकर्षण का कारण है। यही ध्वनि सृष्टि व्यवस्था को बाँधकर चलाती है। यह सृष्टि कामना[९] का द्योतक है। दूसरी बात यह कि इस सूक्त के एक मंत्र के वाक्यांश 'बृहतीर्विश्वायन गर्भ' में सृष्टि की शक्ति-संरचना का बीज है। इस वाक्यांश में बृहती, विश्व, अयन तीन महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ गर्भ को परिभाषित कर रही हैं। बृहती का वृत्त विश्व को मूर्तमान करता है। बृहती के वृत्त में केवल प्रकाश नहीं है, इसमें नासदीय सूक्त में बताया गया सृष्टि कामी मन भी है। बृहती जीव का सृजनकर्त्ता छन्द है। यह तीन सौ साठ अंश का वृत्त है जो पंचतत्त्वों की शिव-शक्ति रश्मियों के कुल योग के बराबर है। इसमें नब्बे-नब्बे अंश के तीन भाग होते हैं। इसमें छत्तीस हजार विश्वमित्र प्राण-सूत्र हैं, जिनसे मनुष्य की सौ वर्ष की पूर्ण आयु निर्धारित की गई है। इस वृत्त के बारह भागों में बारह राशियाँ बनती है, जिन पर विश्व की संचालक ऊर्जा वैश्वानर चलता है और इससे पृथ्वी के ध्रुवों पर छह-छह माह की दिनरात होती है। इसमें उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों अयन है। यह श्येन पक्षी पर-अपर दोनों नभों में उड़ाने भरता है। बृहती से ही संवत्सर निर्मित होता है। जिसमें छह ऋतुओं का चक्र बनता है। सूर्य के केन्द्र पर परिभ्रमण करते छह ग्रहों से यही संरचना बनती है। हिरण्यगर्भ सूक्त में त्रिसप्त की संरचना स्पष्ट है।

अब सूर्य की बुनावट में त्रिसप्त के सतत स्थायित्व की संरचना को देखने का प्रयास करेंगे। वेद की दृष्टि में सूर्य अव्यक्त मूल वाग् तरंग का व्यक्त रूप है।[१०] वेद में त्रयी विद्या तप रही है[११] - इस वाग् की संगमनी शक्ति से अष्ट वसुओं - अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्रों का निर्माण होता है।[१२] यह मूल वाग् ही सूर्य रूप में प्रकट दिखता है। इससे त्रयी विद्या ध्वनित होती है। इसमें तीनों वेद समाहित हैं। चौथा वेद अथर्व इस के हृदय से झर रहा है वैदिक विज्ञान की शब्दावली में यजुः सूर्य का केन्द्र है, ऋग् उसका प्रकाश मंडल और साम रेखीय रश्मियाँ हैं।[१३] ऐसा लगता है कि साम केन्द्रापसारी किरणें है और ऋक् केन्द्राभिसारी किरणें और यजुः इन दोनों का केन्द्र।

सूर्य ज्ञान के साक्षात्कार का विग्रह है। इसलिए याज्ञवल्क्य ने सूर्य से सीधे शुक्ल यजुर्वेद की शिक्षा पायी थी। ज्ञान रूप सूर्य को इंगित करते हुए ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा है कि वह ऋत-पाति सूर्य अपनी त्रिवृत तन्तुओं को चारों ओर विस्तार देते हुए नवीन संततियों को नवनूतनता की शिक्षा प्रदान करता है कि वे कैसे कर्त्तव्य परायण बनें।[१४]

यह मंत्र सूर्य के आभ्यान्तरिक संरचना को भी खोल रहा है यह कि वह मूलतः त्रिसप्तात्मक है। उसके भीतर ऐसा सम स्थापित है जिसमें विषम-विपरीत वेगों का समाहार है, गति-स्थिति एक साथ सजग हैं। इसीलिए वह नवीनता का प्रवर्तक

Vijnana Bharati

(नवीयसीः) है और कर्त्तव्यपरायण होने का संदेश देने वाला परमाचार्य।

सूर्य में तीन आग्नेय वेद हैं। इन्हें स्वायम्भूव ब्रह्म कहा जाता है। इनसे सात रश्मियाँ तब तक प्रकट नहीं हो सकती, जब तक इनके यजुः केन्द्र पर अथर्व की सोमाहुति नहीं होती। यजुः के मध्य में यतच्जुद तत्त्व है जिसका यत् गति है प्राण है, वायु है और जू स्थिति है वागाकाश है। प्राण और वाग् की समष्टि गति-स्थिति की साम्यावस्था में यजुः में स्थित है। इसमें जब सौम्य अथर्व की आहुति होती है, भृगु और अंगिरा प्राण विस्तार लेते हैं। आप, वायु और सोम की घन, तरल और विरल अवस्थाएँ बनती हैं। इनमें षट्कोण निर्मित होता है।

वेदत्रयी का त्रिकोण अथर्व के मिलने से वर्गाकार हो जाता है और अथर्व प्राणों के विस्तार से षट्कोण संरचना परमेष्ठय सुब्रह्म कही जाती है। इन दोनों अवस्थाओं के समन्वय से दशाक्षर विराट का स्वरूप बनता है।[१५] शून्य और नौ तक की संख्याएँ ज्यामितिक आकार में तीन त्रिभुज होगी। इन के मध्य महाकाल शून्य होगा। संख्याओं का यह दर्शन वेद की उपज है। यही शून्य और नौ संख्याओं का गणित आधुनिक विज्ञान को भी संचालित कर रहा है और हम भी दश महाविद्याओं की आराधना, नव दुर्गा की उपासना करने में लगे हुए हैं। इस दृष्टि से देखें तो आज भी भूमंडल के लोग वैदिक धर्म की मान्यता से उबर नहीं पाये हैं। 'नाम बदला है - रूप बदला है, प्यार पहला है, सिर्फ पहला है।'

वास्तव में मेरे विवेचन की सीमा षटकोण से आगे नहीं है 'त्रिसप्त के तीन और सात का योग दस होता अवश्य है, जिसे अथर्व वेद ने अष्ठ चक्र - नौ द्वारवाले देवताओं की उस अयोध्या पुरी का पता बताने के लिए उपयोग किया है जो प्रकाश से घिरा हुआ हिरण्यमय स्वर्ग है। (अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः।।) इसप्रकार तीन गुने सात से निर्मित होने वाली आकृति की चर्चा भी मिलती है मैंने अपनी सीमा मूल वाग् तरंग से वेदत्रयी, उसके चार प्रत्यक्ष रूप और छह आयामों तक रखी है, जिसमें प्रकृति का आकार सुस्पष्ट दिख सके। वस्तुतः प्रकृति को एक सप्राण शरीर के रूप में हमारे ऋषियों ने देखा है जिसके स्थूल और अत्यन्त सूक्ष्म रूप हैं और उसकी संरचना कभी नष्ट नहीं होती। केवल पंच महाभूतों से निर्मित होनेवाली काया ही बार-बार बनती-बिगड़ती है। त्रिसप्त का आकार महाशक्ति प्रकृति का प्रत्यक्ष स्वरूप है। जिसे विभिन्न रूपों में देखा-समझा जा सकता है। इसमें निहित सतत स्थायित्व की उपेक्षा से मनुष्य द्वारा किया हुआ कोई भी कार्य आत्मघाती और अमंगलकारी हो जाता है। शक्ति का त्रिक् मंगल में स्थायित्व पाता है। तीन का ज्यामितिक आकार त्रिकोण स्वयं में अस्थिर है। यह जब वर्ग बन जाता है, तभी सुस्थिर होता है। ब्रह्माण्ड की अन्तस्काया रश्मियों के दूहरे वर्गाकार संजाल से बुना हुआ है। यह झीनी-झीनी चदरिया ताना और भरनी के कारण ही सुस्थिर है। शक्ति त्रिगुण है और मंगल वर्गाकार। इसीलिए हमारे सनातन जीवन-बोध में मंगल को शक्ति साधना का संरक्षक बनाया जाता है।

सतत स्थायित्व का यह सिद्धान्त एक समेकित अवधारणा को सत्यापित करता है। हमारी परंपरा ने मुग्धभाव से इस अवधारणा को आस्था, श्रद्धा का केन्द्र बनाया, क्योंकि भाव से सनातन को सहजता से पाया जा सकता है। परन्तु इस का विज्ञान रूप गणित और ज्यामिति के नियमों पर सत्यापित होता और अनुभूत प्रमाणों से जाना जाता है।

त्रिसप्त की संरचना के आहत होने पर मनुष्य मन की हँसी-खुशी नष्ट हो जाती है; अज्ञात रूप से जीवन का उल्लास मरता है, चित्त में ग्लानि भरती है, प्राण दुर्बल होते हैं; आयु क्षय होती है। क्या कारण है कि हिमालय क्षेत्र के निर्धन लोग भी मुस्काते रहते हैं; गाँव का मन गाने के लिए उमड़ता रहता है जबकि शहर के लोगों को हँसाने के लिए आयोजन किये जाते हैं? भौतिक विकास इसका एकमात्र कारण नहीं है, मनुष्य के भीतर यदि दैहिक, मानसिक और चैतसिक स्तरों पर त्रिसप्त वेदी अनाहत रहे, पूर्ण विकसित रहे तो स्वतः आनंद आता रहता है। इसका कारण यह है कि प्रलय के अन्धकार में तपनेवाले परमात्मा के सृजनकामी मन, हिरण्यगर्भ में रहनेवाले वृहती छंदित मन, यजुः हृदय में रहनेवाले मन, चन्द्रमा रूपी ब्रह्माण्ड के मन और मनुष्य के मन में कहीं कोई समानता हैं। इन मनों के नीचे बीचोबीच खड़ा होकर देखने पर गुम्बद के शिरोभाग के छिद्र विदृति द्वार से वहीं अनंताकाश दिखता है जिसमें एक सृजनकामी मन उत्पन्न हुआ था। उसी मन ने सत्य-ऋतु, मृत-अमृत, प्रकाश-अधंकार, आशा-निराशा की सुंदर बनावट की। उस सृजनकामी मन में था कौन? - प्रकृति! सतत स्थायित्व इसके भीतर है। इनन्त से सात तक, अमृत से मृत तक हम इसका स्वरूप समझ और सतत स्थापित प्राप्त करें। यदि विज्ञान का आधुनिक विकास त्रिसप्त के सतत स्थायित्व की संरचना का अनुसरण करता है तो उसकी अमंगलकारी गति संतुलित हो सकती है। वह प्रकृति को जड़ मानने की गलती नहीं करेगा।

Vijnana Bharati

त्रिसप्त की शक्ति संरचना द्वि-द्वन्द्वात्मक है जिसके केन्द्र पर सम है और प्रबल स्थायित्व। वहाँ स्वस्तिक की दक्षिणावर्त गति होती रहती है और इसमें नित्यनूतन परिवर्तन भी होता रहता है। इसमें काल की सूक्ष्म गति है चिरंतन गति है, इसमें मध्यम और और तीव्र परिवर्तनकारी गतियाँ भी है। इससे समाज व्यवस्था का सिद्धान्त विकसित हो सकता है, अर्थनीति, न्याय और राजनीति के मानक स्थापित किये जा सकते हैं, वास्तु शिल्पा और साहित्य कला का सृजन भी हो सकता है।

सन्दर्भ :

१. ऋ० १०/१९०

२. अथर्व० १/१

३. शु०यजु० ८०/१९

४. अथर्व० १९/५३/१

५. बा०का० ४/२

६. ऋ० १०/१२९/१-७

७. ऋ० १०/१२९/७-८

८. ऋ० १०/१२१/२

९. ऋ० ९०/१२९

१०. शत०ब्रा० १०/५/१/४

११. शत०ब्रा० १०/५/२/२

१२. बृहदारण्यक, ३/९/३

१३. शत०ब्रा० ९०

१४. ऋ० ९/८६/३२

१५. शत०ब्रा० १/१/२

Vijnana Bharati